इकाई 10 धार्मिक विचार और आंदोलन–I*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 पृष्ठभूमि

10.3 परिवर्तित पथः मुगल

10.4 पवित्र राजत्व

10.5 समानान्तर परंपराएँ

10.6 रूढ़िवादिता का पुनरुत्थान और चुनौतियाँ

10.6.1 नक्शबंदी सिलसिला और शेख अहमद सिरहिन्दी

10.6.2 शाह वलीउल्लाह

10.7 सारांश

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.9 संदर्भ ग्रंथ

10.0 उद्देश्य

यह इकाई आपको इनसे परिचित करायेगीः

- सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में दृष्टिगोचर हो रहे धार्मिक विचार और आन्दोलन;
- इस्लामी धार्मिक विचारों की गतिशीलता;
- इस्लामी विचार में 'सहस्राब्दी' का महत्व;
- इस अवधि में मसीहाही परंपरायें; और
- इस्लामी विचारों और प्रथाओं में रुढ़िवादी शिक्षाओं का पुनरुत्थान।

10.1 प्रस्तावना

भारत में इस्लाम के अनुयायियों के बीच, विशेष रूप से वंशानुगत राजत्व और धर्म में राज्य की भूमिका और/या इसके विपरीत और भारतीय सामाजिक ताने–बाने के संदर्भ में सूफी विचारों और संतों की भूमिका और महत्व के संबंध में, धार्मिक विचारों में बहुत विविधता थी। भारत में मुगलों के आगमन के साथ हम एक प्रमुख बदलाव देखते हैं, जिसने एक ओर राजत्व की धारणा को फिर से परिभाषित किया और दूसरी ओर शासकीय अभिजात वर्ग के विन्यास

*प्रोफेसर एस. एम. अजीजुद्दीन हुसैन, पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, न्यू दिल्ली और डॉ. मयंक कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्विविद्यालय, नई दिल्ली।

को पुनर्निमित किया, जिसमें देशी और मुसलमानों दोनों को मुगल सैन्य प्रशासनिक ढाँचे में संवेदनशील और शक्तिशाली पद दिये गये थे।

विभिन्न सूफी सिलसिले अक्सर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष राज्य संरक्षण के साथ फलते–फूलते रहे। मुगल साम्राज्य के शुरुआती दौर में चिश्ती सिलसिला सबसे बड़ा लाभार्थी था और अकबर ने उन्हें बहुत अधिक संरक्षण दिया था। (**बी एच आई सी 107 की इकाई 15** में सूफी परंपरा की विस्तार से चर्चा की गई है) सत्रहवीं शताब्दी में भी नक्शबंदी सिलसिला का उद्‌य और सुदृढ़ीकरण और रूढ़िवादी इस्लामी शिक्षाओं के पुनरुद्धार के प्रयास देखे गये, हालाँकि ये बहुत सफल नहीं रहे। शेख अहमद सिरहिन्दी और शाह वलीउल्लाह जैसे नक्शबंदी सूफी नेता प्रमुख थे क्योंकि वे शासन के संबंध में न केवल मुगल नीतियों के आलोचक थे, बल्कि अन्य सूफी सिलसिलों के बीच प्रचलित उदार परंपराओं और प्रथाओं के भी आलोचक थे।

10.2 पृष्ठभूमि

इस्लाम के राजनीतिक ढाँचे में वंशानुगत राजतन्त्र का कोई स्थान नहीं है। इस्लाम कभी वंशानुगत राजतन्त्र में विश्वास नहीं करता था, हालाँकि 661 में अली की हत्या के बाद, मुवइया सत्ता में आए और मुलुकियात या वंशानुगत राजशाही या खलीफा की शुरुआत की। यद्यपि हिन्दुस्तान में वंशानुगत उत्तराधिकार स्थापित परम्परा थी, लेकिन दिल्ली सल्तनत के दौरान अमीरों/कुलीनों के बीच आम सहमति के माध्यम से शासक के चुनाव की प्रथा अक्सर निर्णायक भूमिकाएं निभाती थी। इसके अलावा, शुरू में शासकों ने खलीफा से मंशूर या अधिष्ठापन पत्र प्राप्त करने की कोशिश की और उनके प्रतिनिधि के रूप में शासन किया, इसलिए उन्होंने 'सुल्तान' शीर्षक अपनाया। सुल्तान के नाम से पहले शुक्रवार की नमाज और ईद की नमाज के खुतबे में खलीफा का नाम पढ़ा जाता था। 1206 से 1526 तक सुल्तानों द्वारा यही प्रक्रिया अपनाई गई। दिल्ली के कुछ सुल्तानों ने जैसे सुल्तान शमसुद्दीन (1210–36) ने बगदाद के खलीफा से अधिष्ठापन पत्र प्राप्त किया था। हालाँकि अन्य सुल्तानों ने आमतौर पर खलीफा को मान्यता दी और शुक्रवार और ईद की नमाज के खुतबे में उनका नाम शामिल किया। यह सुझाव दिया जाता है कि सुल्तान की उपाधि को अपनाने के कारणों में से एक यह भी था, क्योंकि वे खलीफा की ओर से राज्य का कार्य संचालन कर रहे थे।

खलीफा की सत्ता के माध्यम से वैधीकरण ने अक्सर यह धारणा पैदा की कि दिल्ली सुल्तानों ने भी शरीया लागू की और शरियत के अनुसार शासन किया। यह एक मिथ्या धारणा है। (आप इसके बारे में बी एच आई सी 107 में पढ़ चुके हैं)। क्योंकि दुनियादारी के मसलों के लिए जवाबियत नाम की एक स्थापित परंपरा थी। जियाउद्दीन बरनी, जिन्हें आमतौर पर एक रुढ़िवादी मुसलमान माना जाता है, ने *फतवा–ए–जहाँदारी* नामक रचना को संभवतः मोहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल (1325–51) के पहले भाग में लिखा था। बरनी ने काजी मुघ़िस के साथ अलाउद्दीन खिलजी (1296–1316) की चर्चा का भी हवाला दिया है, जहाँ अलाउद्दीन खिलजी ने भारतीय संदर्भ में शरीयत की व्यवहार्यता से संबंधित विभिन्न प्रश्न पूछे थे। अलाउद्दीन ने काजी मुघ़िस के साथ लम्बी चर्चा करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि वह राज्य और लोगों के हित में जो कुछ भी होगा वह करेंगे। बरनी के समकालीन सूफियों में से एक, मीर सैय्यद अली हमदानी, जिन्हें कश्मीर में शाह–ए–हमदान कहा जाता है, ने सम्राटों के लिए एक सलाह पुस्तक *जखिरात–उल–मुलुक* भी लिखी थी।

10.3 परिवर्तित पथः मुगल

1526 में बाबर ने इब्राहिम लोदी को हराकर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव रखी। मुगलों को खलीफा पर विश्वास नहीं था और उन्होंने एक समप्रभु शासक पादशाह की उपाधि अपनाई। अब जुम्मा और ईद की नमाज के खुतबे में खलीफा का नाम नहीं लिया जाता था। उन्होंने राजत्व के तुर्कों–मंगोल सिद्धांत का अनुसरण किया। वे स्वयं को पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में मानते थे और ये मानते थे कि यह राजत्व उन्हें ईश्वर द्वारा प्रदान किया गया है, इसलिए वे सीधे ईश्वर के प्रति जवाबदेह हैं। उनकी कार्यवाही पर कोई सवाल नहीं उठा सकता था। 1556 में अकबर सम्राट बना और उसने तौरा–ए–चगेंजी का अनुसरण किया। अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फजल ने राजत्व के सिद्धांत पर विस्तृत विवरण लिखा। भारत में मुगलकाल के दौरान शुक्रवार और ईद की नमाजों के खुतबे में पैगम्बर मोहम्मद, उनके कुछ साथियों, खुलाफा–ए–रशीदिन और पैगम्बर मोहम्मद के परिवार के सदस्यों के नाम पढ़े जाते थे और फिर मुगल बादशाह का नाम पढ़ा जाता था। बाबर से लेकर बहादुरशाह द्वितीय तक यह कार्य प्रणाली जारी रही। मुगलों ने इस मुद्दे पर कभी समझौता नहीं किया और इस मुद्दे पर अपने से ऊपर मुस्लिम दुनिया की किसी भी सत्ता को स्वीकार भी नहीं किया, चाहे वे ऑटोमन, फारसी या काबा के संरक्षक रहे हों। अकबर ने हज के अवसर पर एक प्रतिनिधि मंडल भेजना शुरू किया और मक्का के शरीफ, नजफ और करबला के मुत्तवलियों को, यह दिखाकर कि वह इतना शक्तिशाली है कि वह इस्लामी तीर्थ केन्द्रों को वित्तीय सहायता प्रदान कर सकता था, के लिए महँगें उपहार भेजना शुरू किया। इस प्रथा का पालन करके उसने मुगल साम्राज्य के बाहर भी अपनी संप्रभु स्थिति की घोषणा की और उसे बार–बार दोहराया।

उलेमा मुगल साम्राज्य की एक महत्वपूर्ण शाखा थे और वे साम्राज्य में बहुत महत्वपूर्ण पदों पर आसीन थे। वे न्यायिक कार्य कर रहे थे और इसलिए वे नियमित आधार पर जनता से जुड़े रहते थे। दूसरे, उलेमाओं को पूरे मुगल साम्राज्य में जामा मस्जिदों के इमाम के रूप में भी नियुक्त्त किया जाता था। मुगल साम्राज्य के लगभग सभी कस्बों में जामा मस्जिदें थी। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि उलेमा को अपना वेतन/पारिश्रमिक राज्य के खजाने से प्राप्त होता था और यह ज्यादातर राजस्व के जरिये होता था। इस निर्भरता ने उन्हें मुगल बादशाहों की इच्छाओं के अधीन कर रखा था। मस्जिदों के इमाम के रूप में वे पूरे मुगल साम्राज्य में जुम्मा की नमाज और ईद की नमाज के खुतबे में मुगल बादशाह के नाम का पाठ करते थे।

ऐसे उदाहरण हैं जहाँ उलेमा ने अपनी स्थिति पर बल दिया और उन्होंने सत्तारूढ़ ताकतों के निर्देशों का पालन करने से इन्कार कर दिया। औंरगजेब द्वारा अपने पिता शाहजहाँ को नजरबंद करने के बाद, उसने आगरा की जामा मस्जिद के इमाम से जुम्मा के खुतबा में अपने नाम का वाचन करने के लिए कहा, लेकिन इमाम ने जवाब दिया कि बादशाह शाहजहाँ जीवित हैं इसलिए मैं उनका नाम ही पढ़ूंगा। औरंगजेब ने उस इमाम को हटा दिया और एक नया इमाम नियुक्त किया, जिसने खुतबे में औरंगजेब के नाम का पाठ किया।

10.4 पवित्र राजत्व

मुगल वंश के दौरान शासकों के धार्मिक विचारों का परिवर्तित रुख कई स्तरों पर प्रकट हुआ। धार्मिक विचारों के संबंध में अकबर की विभिन्न पहलों और नीतियों पर **बी एच आई सी 109** की **इकाई 17 राज्य और धर्म** में विस्तार से चर्चा की गई है। इसलिए पुनर्लेखन के बजाए, इस भाग में पवित्र राजत्व की धारणाओं और उससे संबंधित हाल के इतिहास लेखन की जाँच की जाएगी। ए. अजफर मोइन ने अपनी पुस्तक *मिलेनियल सॉवरेनः सेकरेड किंगशिप एंड सेन्टहुड* में शासकों के बीच एक प्रकार के संत होने का दावा करने की बढ़ती प्रवृत्ति की जाँच पड़ताल की है, जो शरीयत की सीमाओं और जिहाद (पवित्र युद्धों) के अभ्यास से परे एक कदम था। यह एक लोकप्रिय धारणा थी कि सत्रहवीं शताब्दी की शुरूआत में जब इस्लाम एक हजार साल पूरे करेगा, तो इस्लाम को पुनर्जीवित करने के लिए एक उपदेशक का जन्म होगा।

तुर्को मंगोल वंशावली ने, जिसने मुगल शासकों को स्वयं को जिल–ए–इलाही या ईश्वर की छाया के रूप में दावा करने की अनुमति दी, उन्हें न केवल अपने राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वियों से बल्कि उलेमा के संबंध में भी एक बहुत ही भिन्न आसन पर विराजमान किया। इस विशिष्टता की एक बहुत ही ठोस अभिव्यक्ति अकबर ने 1579 में महजर की घोषणा के साथ की थी। इसके बाद सुलह–ए–कुल (सभी के साथ शांति; पूर्ण शांति) और तौहीद–ए–इलाही (गलती से जिसे दीन–ए–इलाही कहा जाता है) का आगमन हुआ। हालाँकि, अकबर ने झरोखा दर्शन, तुलादान आदि विभिन्न प्रथाओं की शुरुआत करके अपने चारों ओर पवित्रता की आभा को बहुत सावधानी से बुना थी। आगे और विस्तार में जाने से पहले मुगल राजत्व के पवित्र चरित्र को स्थापित करने में अबुल फजल की शानदार लेखन शैली द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका को पहचानना महत्वपूर्ण है।

पवित्र राजत्व के प्रश्न को केवल बादशाह अकबर के अनन्य नवाचार के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि हम शाह इस्माइल (1501–1524) के तहत ईरान में सफाविद साम्राज्य के उदय और सुदृढ़ीकरण में पवित्र राजत्व की एक पूर्ववर्ती परंपरा पाते हैं। उन्हें बहुत कम उम्र में उत्तर–पश्चिमी ईरान में सफाविद सूफी सिलसिले का नेतृत्व विरासत में मिला और बाद में उन्होंने सफाविद् साम्राज्य को सुदृढ़ किया। उन्हें इस्लामी पंरपराओं का महदी माना जाता था। इस प्रकार उन्होंने संप्रभु शासक के रूप में संतत्व के साथ–साथ राजनैतिक शक्ति को भी मिला दिया। शिया सफाविद् और सुन्नी मुगलों के बीच, खासकर सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के दौरान, संबंध निस्संदेह बहुत करीबी थे। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि यदि एक ओर दोनों मुगल शासकों, बाबर और हुमायूँ ने शुरुआती परम्परा से उपलब्ध परवर्ती ''तैमूर दरबारों के अत्यधिक शैलीबद्ध रूप और तौर तरीके प्राप्त किये थे जिसे बाद में सफाविदों ने उधार लिया था और उससे एक सूफी सिलसिले को शाही राजत्व में विकसित किया। दो नवजात सोलहवीं शताब्दी के साम्राज्यों ने एक साझा सांस्कृतिक सन्दर्भ ग्रहण किया था और उन्होंने एक दूसरे के तौर तरीकों और विधियों से सीखा था। यह कोई संयोग नहीं था कि इन दोनों राज्यों में राजतंत्र की एक समान शैली विकसित हुई, जिसमें राजनैतिक सत्ता के दावे संतत्व के दावों से आविभाज्य हो गये'' (ए. अजफर मोइन, *मिलेनियल सॉवरेनः सेकरेड किंगशिप एंड सेंटहुड,* प्राइमस, नई दिल्ली और कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, चिचेस्टर, वेस्ट ससेक्स, 2017, पृष्ठ 4)।

मुगल–सफाविद् साझा शाही संस्कृति के विवरण में आगे जाने के बजाए, हम अपनी चर्चा मुगलों तक सीमित रखेंगे। इस उद्देश्य के लिए हमें इस्लामी विचारों में महदी की धारणाओं पर भी थोड़ा ध्यान देने की जरूरत है। आमतौर पर यह माना जाता था कि इस्लाम की पहली सहस्राब्दी की शुरुआत में एक महदी या उपदेशक इस्लाम को पुनर्जीवित करने और इस्लाम की बुराईयों को दूर करने को पैदा होगा, यदि हुआ तो यह संयोग से अधिक है कि दोनों साम्राज्य; सफाविद् और मुगल इस्लाम की पहली सहस्राब्दी में उभरे। कुछ अन्य भी थे, विशेष रूप से भारत में जौनपुर के सैयद मोहम्मद, जिन्होंने कथित तौर पर स्वयं को महदी घोषित किया था। इस प्रकार, एक अवधारणा पहले से ही प्रचलन में थी जिसने सफाविद ईरान में शाह इस्माइल और भारत में अकबर जैसे शासकों के अनकहे दावों की पुष्टि की। हालाँकि, अकबर ने इस आशय का कोई सीधा दावा कभी नहीं किया लेकिन उन्होंने प्रतीकात्मकता को विनियोजित किया। यह आरोप लगाया गया था कि, जिस पर हमेशा विश्वास नहीं किया जा सकता है, अकबर स्वयं को एक नया पैगम्बर या यहाँ तक कि पृथ्वी पर अवतरित एक देवत्व होने का दावा कर रहा था। यह विवाद चरित्र में वैश्विक था, जिसकी चर्चा मध्य पूर्व में, विशेष रूप से ईरान, ट्रांसओक्सानिया, स्पेन और पुर्तगाल में भी हुई थी।

हालाँकि, आरोपों में बहुत कम सत्य था लेकिन यह प्रचलन में थे और लोकप्रिय रूप में चर्चा में थे। अजफर मोइन का तर्क है कि अकबर के राजत्व के पवित्र चरित्र को किसी भी सैद्धांतिक दृष्टिकोण की तुलना में अनुष्ठानों और प्रथाओं के माध्यम से अधिक समझा जा सकता है। वह यह भी सुझाव देते हैं कि हमें इस तथ्य की सराहना करने की आवश्यकता है कि सूफी परंपराएँ भारतीय उपमहाद्वीप में फैली हुई थी और इस्लाम की उस छवि को प्रस्तुत करती थी, जिसमें सभी का स्वागत था। सूफी खानकाहों के द्वार किसी धर्म और जाति का ध्यान रखे बिना सभी के लिए खुले थे। सूफी सन्तों की चमत्कारी शक्तियों में व्यापक विश्वास था, जो इस्लाम के मूल सिद्धांतों के विपरीत था। इस प्रकार, इस्लाम की एक बहुत उदार समझ विकसित हुई थी, जहाँ करिश्माई आध्यात्मिक नेतृत्व स्वीकार्य था। इससे पहले कि हम अकबर के विशिष्ट मामलें की जाँच करें, यह बताना आवश्यक है कि रूढ़िवादी तत्वों की प्रतिक्रियाएँ और विरोध भी थे। आमतौर पर मुसलमानों के बीच और विशेष रूप से सूफियों के बीच प्रचलित उदार परंपरा का सबसे मुखर विरोध शेख अहमद सिरहिन्दी के नेतृत्व में नक्शबंदी सिलसिले और अठाहरवीं शताब्दी में शाह वलीउल्लाह की तरफ से आया था।

करिश्माई लक्षणों के निर्माण के लिए विभिन्न प्रकार के चमत्कारों की आवश्यकता होती है जिसमें महत्वपूर्ण हैं ज्योतिषिय गणनाओं का विनियोग आदि, स्मारकीय वास्तुकला, चित्रकला में चित्रण, अनुष्ठान और दरबार के शिष्टाचार, चमत्कार, शानदार वंशावली, प्रशंसात्मक इतिहास आदि। समय के साथ अकबर ने इनमें से अधिकांश लक्षणों को मजबूत किया। **(आप बी एच आई सी 109 की इकाई 13 में वास्तुकला के बारे में, इकाई 14 में चित्रकला के बारे में पढ़ सकते हैं। इसी पाठ्यक्रम की इकाई 16 में दरबार के रीति रिवाजों के साथ–साथ इकाई 1 इतिहास लेखन से संबंधित है। पाठ्यक्रम बी एच आई सी–109 की इकाई 9 राजत्व के विचारों पर और इकाई 12 राज्य और धर्म के बीच संबंधों की जाँच पड़ताल करती है)**। इस सिलसिले में अजफर मोइन द्वारा उजागर की गई निम्नलिखित घटना बहुत शिक्षाप्रद हैः ''अकबर ने वर्ष 1582 में

अपनी विजयों का जश्न मनाया। इस्लामी हिजरी कैलेन्डर के अनुसार, यह केवल 990वाँ वर्ष था। लेकिन ज्योतिष से परिचित लोग जानते थे कि इस वर्ष शनि और वृहस्पति का एक महत्वपूर्ण संयोग उसी खगोलीय स्थिति में फिर से आया था जैसा कि यह इस्लाम के जन्म और ससानियन–जोरोष्टियन व्यवस्था के अन्त के समय आया था, एक सहस्राब्दी में एक बार होने वाली घटना। दरबार में भव्य समारोह का आयेाजन किया गया। उन पर ''हजार'' (अल्फ) शब्द की मोहर के साथ नये सिक्के जारी किये गये थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि एक हजार वर्ष के इतिहास को; *तारीख–ए–अल्फी* (सहस्राब्दी इतिहास) लिखने का कार्य शुरु किया गया'' (पृष्ट 133)।

अकबरनामा में लगभग देवीय विशेषताओं का श्रेय देते हुए अबुल फजल अकबर के जन्म और उसके बचपन से जुड़े चमत्कारों का बहुत विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। वह लिखता है कि हुमायूँ को अपने अभी पैदा भी नहीं हुए बच्चे अकबर की महानता के बारे में पूर्वाभास था। उसे इस तरह चित्रित किया गया है जैसे उसे अपने बेटे के जन्म के ज्योतिषिय महत्व के बारे में पता था, जिससे वह अपने तैमूर पूर्वजों से भी महान बनने वाला था। *अकबरनामा* सुझाव देता है कि अकबर के पास अपनी शैशवास्था में बोलने की क्षमता थी जैसा कि ईसा मसीह को पालने से ही थी। पवित्र राजत्व पर मुगल दावा अकबर के बाद भी जारी रहा और उसके समकालीनों द्वारा आलोचना के बावजूद, राजत्व के दैवीय सिद्धांत में विश्वास जनता की कल्पना में बना रहा। हालांकि बदायूँनी को मसीहा विश्वासी महदवी के प्रति सहानुभूति थी, लेकिन उसने बार–बार अकबर के देवत्व के दावे को चुनौती दी।

संरक्षणः धर्मों या सम्प्रदायों से परे

अकबर ने अजमेर में शेख मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के लिए भूमि अनुदान की पेशकश की। उन्होंने इस दरगाह पर एक सज्जादा नशीन नियुक्त किया, ताकि वह मुगल बादशाह के नियन्त्रण में रहे। उसने हिन्दूओं के एक महत्वपूर्ण तीर्थस्थल वृन्दावन के मन्दिर को भी भूमि अनुदान दिया। दरगाह और मन्दिर के लिए अकबर के दोनों फरमानों में यह उल्लेख किया गया था कि उनसे मुगल साम्राज्य की लम्बी आयु के लिए प्रार्थना करने की अपेक्षा की गई थी। इसलिए, जब भी कोई त्यौहार मनाया जाता था या कोई समारोह आयोजित किया जाता था या प्रार्थना की जाती थी, तो मुगल बादशाह का आभार व्यक्त किया जाता था।

अकबर ने भारत के प्रख्यात सूफियों जैसे शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, शेख निजामुद्दीन औलिया, शेख फरदुद्दीन गंज–ए–शकर, शेख बहाउद्दीन ज़कारिया, शेख सर्फुद्दीन याहया मलेरी और अन्य की दरगाहों को भी भूमि अनुदान दिया। मुगल बादशाहों ने न केवल प्रख्यात सूफियों की बल्कि मुगल साम्राज्य के विभिन्न कस्बों में कम ज्ञात सूफियों की दरगाहों को भी भूमि अनुदान दिया। इन भूमि अनुदानों के माध्यम से बादशाहों ने परोक्ष रूप से दरगाहों के कार्यों पर नियन्त्रण स्थापित किया। इसने परोक्ष रूप से जनता के बीच अच्छा नाम भी बनाया कि मुगल, भारत के इन प्रख्यात सूफियों के भक्त हैं।

बोध प्रश्न 1

1) भारत में सोलहवीं शताब्दी के दौरान इस्लामी धार्मिक विचारों पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

2) सोलहवीं शताब्दी के भारत में पवित्र राजत्व के विचार की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

10.5 समानांतर परंपराएँ

ऐसी अन्य परंपराएँ थीं जो स्वयं को मसीहा होने का दावा करती थी या किसी प्रकार के योद्धा संत होने का आभास कराती थी; जो पवित्र राजत्व का एक अन्य संस्करण था। उनमें से सबसे प्रमुख थे महदवी; जौनपुर के सैयद मुहुम्मद के अनुयायी। मक्का की अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने खुद को प्रतिक्षित मसीहा घोषित किया। संचरित वर्त्तान्त उनके जीवन प्रारूप की विशिष्टता को याद करते हैं जो राशि चक्र और खगोलिए नक्षत्र और पैगम्बर के जीवन चक्र के साथ समानताएँ रखती थी। उन्होंने न्यायशास्त्र के सभी मौजूदा चार इस्लामी मतों को काल विरूद्ध घोषित कर दिया और वैराग्यवाद का प्रचार किया। उनका आंदोलन सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गुजरात, सिन्ध और सफाविद नियंत्रित अफगानिस्तान के क्षेत्र में अधिक प्रचलित था। सैयद मुहुम्मद की मृत्यु के बाद भी, उनके अनुयायी उत्पीड़न के बावजूद बचे रहे और अकबर के शासन काल के दौरान उसे महदवी सहस्राब्दी विचारधारा को स्वीकार करने के लिए मनाने की चेष्टा की।

योद्वा राजा की एक ओर समानांतर परंपरा शत्तारी आन्दोलन था। भारत में इसकी स्थापना शाह अबदुल्ला (1485) द्वारा की गई थी, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने पूरे देश की व्यापक यात्रा की थी। उनके भक्तों का दल पताका लेकर चलता था और ढोल की थाप के साथ मार्च करता था। वह स्वयं एक राजा की पोशाक पहने हुए एक राजसी सत्ता का सारा साजोसामान रखते थे। पवित्र राजत्व की ऐसी परंपराओं ने मुगलों को राजवंश में देवत्व के अपने विचारों के साथ प्रयोग करने के लिए एक आदर्श पृष्ठभूमि प्रदान की।

10.6 रूढ़िवादिता का पुनरुत्थान और चुनौतियाँ

सोलहवीं शताब्दी के अन्त और सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में शेख अहमद सिरहिन्दी के नेतृत्व में पवित्र राजत्व और मसीहाई धारणाओं की आलोचना ने गति पकड़ी। ऐसा नहीं है कि केवल

राजनीतिक व्यवस्था के उदारवादी रवैये के खिलाफ आक्रोश था, हम सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में नक्शबंदी सिलसिले की शुरूआत में भी ऐसा पाते हैं।

10.6.1 नक्शबंदी सिलसिला और शेख अहमद सिरहिन्दी

नक्शबंदी सिलसिला चौदहवीं शताब्दी में ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंद बुखारी द्वारा शुरू किया गया था। इसे भारत में ख्वाजा बकी बिल्लाह (1563–1603) द्वारा शुरू किया गया था। नक्शबंदी सिलसिला शुरू से ही शरीयत की प्रधानता पर जोर देता था और बिद्दत (नवाचार) का विरोध करता था। उनका मानना था कि बिद्धत/नवाचारों ने इस्लाम की पवित्रता से समझौता किया था। सत्रहवीं शताब्दी में नक्शबंदी के शरीयत पर जोर देने वाले सबसे प्रमुख प्रतिवादक शेख अहमद सिरहिन्दी थे। शेख अहमद सिरहिन्दी ने तर्क दिया कि ईश्वर ने दुनिया बनाई है, इसलिए उसे उसकी उसके निर्मित प्राणियों के साथ पहचान नहीं की जा सकती है और न ही की जानी चाहिए। वहदुत उत वुजूद को नकारते हुये शेख अहमद सिरहिन्दी ने वहदुत उल शुहुद (प्रतीतवाद) के सिद्धांत का प्रस्ताव रखा। इसलिए वह अति आनन्द की सूफी प्रथाओं के आलोचक है, जिससे सूफियों ने निर्माता के साथ स्पष्ट मिलन का दावा किया। उन्होंने कहा कि सृष्टिकर्ता और मनुष्य के बीच का संबंध दास और स्वामी का है। जैसा कि सूफियों ने दावा किया था, यह प्रेमी और प्रेमिका का संबंध नहीं हो सकता है। शेख अहमद सिरहिन्दी शरीयत के पालन पर जोर दे रहे थे और इसलिए उन्हें रूढ़िवादी माना जाता था।

यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि शेख अहमद सिरहिन्दी को, मुख्य रूप से उनके कुछ पत्रों के आधार पर जो उन्होंने मुगल अधिकारियों को लिखे थे, जिसमें उन्होंने शरियत को सख्ती से लागू करने की माँग की थी, बाद की शताब्दियों में एक रूढ़िवादी इस्लाम के प्रचारक के रूप में देखा गया था। इसलिए हमें सत्रहवीं शताब्दी के भारत के संदर्भ में उनकी भूमिका और प्रभाव की जाँच करने की आवश्यकता है। योहानन फ्रीडमैन के शब्दों में, ''उनका सही आंकलन मुगल अधिकारियों को लिखे केवल कुछ पत्रों पर विचार करके नहीं किया जा सकता है, जिसमें उन्होंने राज्य द्वारा शरियत को सख्ती से लागू करने की माँग की थी। सिरहिन्दी के पत्रों और अन्य रचनाओं का बड़ा हिस्सा तस्वुफ के सवालों से संबंधित है। उनमें उनका मुख्य प्रयास अपने सूफी विचारों को उनके विशिष्ट सूफी तत्व से वंचित किये बिना एक सुन्नी संदर्भ विन्यास में एकीकृत करना है।'' (योहानन फ्रीडमैन, *शेख अहमद सिरहिन्दीः एन आउटलाइन ऑफ हिज थॉट एंड ए स्टढ़ी ऑफ हिज इमेज इन द आइज ऑफ पोस्टेरिटी*, मैकगिल–क्वीन यूनिवर्सिटी प्रेस, मोन्टीरियल एंड लंदन, 1971, पृष्ठ 114)।

10.6.2 शाह वलीउल्लाह

शाह वलीउल्लाह (1702–1762) एक प्रसिद्ध विद्वान और नक्शबंदी सिलसिले के एक संत थे। उन्होंने वहदत–उल–वुजुद और वहदत–उल–शुहूद के दो सिद्धांतों में मेल–मिलाप कराने की कोशिश की। उनका तर्क था कि दोनों सिद्धांतों के बीच कोई मौलिक अन्तर नहीं है। उन्होंने बताया कि इन दोनों विचारों में ईश्वर का संबंध अस्तित्व से है और केवल उसका वास्तविक स्वतंत्र अस्तित्व है। संसार का अस्तित्व वास्तविक नहीं है लेकिन फिर भी इसे काल्पनिक भी नहीं कहा जा सकता। यह कहना कि वास्तविकता एक है जो स्वयं को अंनत रूपों और बहुलता में प्रकट करती है, यह मानने के समान है कि अस्तित्वमान होना मूलतः अस्तित्वमान होने के नाम और लक्षणों में प्रतिबिंत होता है। यदि दोनों दृष्टिकोणों के बीच कोई अंतर है तो यह

महत्वहीन है। अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में जब मुगल साम्राज्य का पतन हो रहा था और मराठा, जाट और सिक्ख जैसे समुदायों ने मुस्लिम शक्ति के लिए एक गंभीर खतरा पैदा कर दिया था, उस समय हम शाह वलीउल्लाह के नेतृत्व में इस्लामी पुनरूत्थानवादी आंदोलन का उदय पाते हैं। यह स्वभाव में धार्मिक–राजनीतिक था। उनके धार्मिक और राजनीतिक विचारों ने मुजाहिदिन (पवित्र योद्धा) नामक धार्मिक सुधारकों के एक समूह को प्रभावित किया। यह मुख्य रूप से 1857 की क्रांति के बाद में था कि उनके धार्मिक विचारों ने इस्लामी पुर्नउत्थानवाद के विभिन्न मतों को प्रभावित कियाः सैयद अहमद खान का आधुनिकतावाद और अलीगढ़ आन्दोलन, देवबंद स्कूल के परंपरावादी धर्म शास्त्री और नव पारंपरिक अहल हदीथ (मुहम्मद की परंपरा के अनुयायी)। (इकाई 29ः ई एच आई 04, इग्नू, 1994)।

बोध प्रश्न 2

1) सोहलवीं और सत्रहवीं सदी के दौरान भारत में मसीहाई परंपरा पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

2) सोहलवीं और सत्रहवीं सदी के दौरान भारत में नक्शबंदी सिलसिले के दर्शन और प्रभाव पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

10.7 सारांश

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में भारत ने इस्लामी धार्मिक विचारों में नयी पहल देखी। एक ओर तो राजनैतिक सत्ताएँ खलीफा के नियन्त्रण से बाहर चली गई, भले ही वह पहले के काल में नाममात्र का ही क्यों ना रहा हो। इस अवधि में सहस्राब्दी के इस्लामी विचारों के साथ बढ़ते प्रयोग भी देखे गये। पवित्र राजत्व की धारणाओं को धीरे–धीरे विविध सांस्कृतिक प्रथाओं, राजसी सत्ता से संबंधित अनुष्ठानों और चित्रकला, वास्तुकला और साहित्य में प्रतीकवाद के माध्यम से सुदृढ़ीकृत किया गया। भारतीय उपमहाद्वीप का सूफी विचारों और सूफी सिलसिलों के साथ एक लम्बा संबंध था जिसने बिद्दत को प्रोत्साहित किया, कभी भी शरीयत के सख्त अनुपालन पर जोर नहीं दिया। हालांकि, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में रूढ़िवादिता की दिशा में एक आन्दोलन देखा गया, विशेष रूप से सूफियों की विभिन्न प्रथाओं के संबंध में।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 10.2 देखें।

2) भाग 10.4 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 10.5 देखें।

2) उपभाग 10.6.1 देखें।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Green, Nile. 2012. *Sufism: A Global History*. Chichester and Malden: John Wiley & Sons.

Moin A. Azfar 2017. *Millennial Sovereign: Sacred Kingship and Sainthood.* Primus: New Delhi and New Yprk: Columbia University Press.

Rizvi, S.A.A. 1978. *A history of Sufism in India*, Vol.-I. New Delhi: Munshiram Manoharlal.

Rizvi, S.A.A. 1983. *A history of Sufism in India*, Vol.-II. New Delhi: Munshiram Manoharlal.

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY